पंचकन्या या प्रश्नचिन्ह ?
विमर्श से परे, स्त्री

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर विशेष

संगीता मिश्र

कवयित्री, गायिका
एवं संगीतकार
नई दिल्ली

संगीता मिश्र का जन्म बिहार के कला एवं साहित्य के परिवेश में हुआ। उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य में स्नातकोत्तर करने के साथ-साथ पत्रकारिता में भी स्नातकोत्तर डिप्लोमा लिया है और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की विधिवत शिक्षा भी ली है।

पहली रचना 1987 में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात, हिन्दी और अंग्रेज़ी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं। पहला ग़ज़ल-संग्रह—'हम ख़्वाब से बातें करते हैं' (सर्वभाषा ट्रस्ट) और दूसरी पुस्तक स्त्री विमर्श विषयक काव्य गाथा- 'सीपी में शंखनाद' (राजकमल प्रकाशन) प्रकाशित हो चुके हैं।

हिन्दी-अंग्रेज़ी के लगभग 30 संकलनों में उनकी कविताएँ शामिल की गई हैं। समकालीन हिन्दी कवियों के एक कविता-संग्रह- 'सुनहरा स्पर्श' का उन्होंने सम्पादन किया है। समाचार-चैनल में एंकर के रूप में काम और मंच पर गायन भी किया है।

'फ़ेमिना' पत्रिका ने उनके एक आलेख को 2013 में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित और प्रकाशित किया। देहरादून में 2017 में आयोजित 'वैली ऑफ़ वर्ड्स' में उनके ब्लॉग को 'द बेस्ट ब्लॉग ऑफ़ बिहार' पुरस्कार प्रदान किया गया। उनकी अंग्रेज़ी कविताओं को 'क्रिसेंथेमम क्रॉनिकल्स अवार्ड, 2019', 'रुएल इंटरनेशनल अवॉर्ड, 2023' और ग़ज़ल-संग्रह को 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन चतुर्वेदी प्रतिभा मिश्र स्मृति सम्मान, 2024', अटल बिहारी वाजपेयी सम्मान 2025, और 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन विदुषी अनुपमानाथ स्मृति सम्मान 2025' से सम्मानित किया गया !!

विचार मंथन

उसकी अस्मिता आज भी एक प्रश्नचिन्ह है। क्षण में सर्वस्व, तो अगले ही क्षण नगण्य ठहरा दी जाती है वह। कभी एक बूँद, कभी महानदी, तो कभी शून्य ! वह एक स्त्री है ! "कौन है स्त्री?" — यदि सीधे-सीधे यह प्रश्न पूछें तो अधिकतर उत्तर यही मिलेगा कि 'स्त्री तो देवी है' ! 'स्त्री कौन है' इससे अधिक क्लीशे'ड या घिसा-पिटा प्रश्न कोई और नहीं... और न ही उसे देवी ठहराने जैसी बासी और उबाऊ कोई और रूढोक्ति !

क्या वह 'राजा रवि वर्मा' रचित किसी देवी पेंटिंग की कोई कैलेंडर प्रतिकृति है जिसके समक्ष आप अपनी शौर्य-प्रतिष्ठा की धूप-अगरबत्ती जलाते और पूजने का शिष्टाचार दिखलाते हैं ? या, वह मात्र काठ-परिश्रम करने वाली आपकी तुच्छ गृह-सेविका है जो आपके जीवन को सुगंधित करने के लिए स्वयं की आहुति देती है ?

नहीं ! न तो उसे वह दैवीय आकार चाहिए, न ही आपका औपचारिक शौर्य-शिष्टाचार, या आपकी शिव'ल्री ! उसे केवल मानवीय संवेदनाओं की अपेक्षा है आपसे। अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो वह समर्थ है ही। स्त्री की इन्हीं मासूम अपेक्षाओं की पुरुषवाद द्वारा की गई उपेक्षा से शुरू होती है एक भावनात्मक रिक्तता जिस कारण स्त्री-पुरुष संबंधों में कड़वाहट के सिवा कुछ भी नहीं बचता।

'स्त्री विमर्श' (feminine discourses)—आज के दौर में साहित्य और समाज का सबसे अधिक चर्चित विषय रहा है ! पर यह केवल आज के दौर की बात नहीं है। पिछले कुछेक सौ वर्षों में, जब से हमारे देश में स्त्रीवाद (feminism) ने सिर उठाना शुरू किया, साहित्य में भी यह विमर्श शुरू हुआ। पर कभी-कभी इस साहित्यिक स्त्री विमर्श की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठता है कि जो लिखा जा रहा है वह सच्चे अर्थों में कोई विमर्श है भी या नहीं !

स्त्रीवाद के पारंपरिक और पौराणिक
संदर्भों की बात करें तो कहा गया है —

"पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्" अर्थात अहिल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा और मंदोदरी— ये वे पंच प्रातः स्मरणीय स्त्रियाँ हैं जिनका नाम लेने मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं...! इन पौराणिक कथाओं में मुग्धभाव से विचरते हुए क्या हमने कभी सोचा कि क्यों और कैसे उन पंच-कन्याओं के नाममात्र से ही हमारे पाप नष्ट हो जाते हैं ? क्या इसीलिए कि उन्होंने जीवन पर्यन्त उन्हीं पापों को ढोया जो उनके अपनों ने ढाये थे उन पर ? क्यों एक स्त्री चाहे-अनचाहे उन्हीं संबंधों से बँधी रहती है जो उसकी अस्मिता का अंश-अंश, कण-कण हर लेते हैं और उसे आभास तक नहीं होता कि वह ठगी गई है ? क्यों एक स्त्री रिश्तों-नातों की परिधि से बाहर खड़े अपने अस्तित्व को आँक तक नहीं पाती ? क्योंकि वह "स्त्री" होने से पहले केवल माँ, बहन, बेटी या पत्नी इत्यादि ही बनकर रह जाती है ?

सदियों से वह उन्हीं अवांछित दायित्वों का निर्वहन कर रही है जिसके लिए उसे कोई प्रशंसा तो दूर, कोरी स्वीकृति तक नहीं मिलती है। क्या आज उतनी ही प्रातः स्मरणीय हैं वो स्त्रियाँ जो अहिल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा या मंदोदरी जैसी हैं ? या, क्या सम्माननीय हैं वो स्त्रियाँ जो उन जैसी बिल्कुल भी नहीं हैं ? नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है ! आज तो पंच-कन्याओं जैसी स्त्रियों को सीधे 'चरित्रहीन' ठहरा दिया जाएगा और उनसे उलट स्वभाव की स्त्रियाँ भी निरर्थक और नगण्य ही रहेंगी। तो क्या स्त्री होना दोयम दर्ज़े का मनुष्य होना

है ? यहाँ हमारा भारतीय 'स्त्री विमर्श' अपनी पश्चिमी उत्पत्ति वाले अर्थ से बिल्कुल भिन्न सिद्ध होता है ! हमारे धर्मग्रंथों में "स्त्री-पुरुष" नहीं, बल्कि "प्रकृति-पुरुष" की अवधारणा है जो एक दूसरे से भिन्न होकर भी अभिन्न हैं । ऐसी स्थिति में यह विमर्श एक सामाजिक विडम्बना सा हो गया है जहाँ स्त्री 'शक्तिरूपेण' होकर भी प्रताड़ित और उपेक्षित है !

समय बदला, पर नहीं बदला यह सच कि आज भी सात फेरों के समय पुरुष आगे रहता है प्राप्तिकर्ता के रुप में... पर जब स्त्री की बारी आती है, तो वह आगे आती है समर्पिता के रुप में, बलिदान की देवी बनकर ! स्त्री यदि बाहर जाकर काम करे तो 'घर तोड़ने वाली' और घर संभाले तो 'टुकड़ों पर पलने वाली' कहलाती है ! यदि वह अपने बारे में सोचे तो स्वार्थी कहलाए, परिवार के भले के लिए उसे अपनी इच्छाएँ मारनी पड़ें... और फिर भी, यदि कहीं कुछ भी ग़लत हो तो सारा दोषारोपण उसी पर किया जाए। उसकी आजीविका परिवार के लिए आवश्यक तो हो, पर उसकी आर्थिक स्वतंत्रता सबकी आँखों की किरकिरी बनी रहे।

समय नहीं बदला ! बस बदल रही है स्त्रियों की सोच। कई ज्वलंत प्रश्न खड़े हैं जो आज की स्त्री को सोचने पर विवश करते हैं कि, काश, मेरे परिवार के पुरुष मुझे बस मनुष्य ही समझ लें ! यही बदलाव अपेक्षित है पुरुष मानसिकता में ! यदि यह स्त्री-सोच आपकी सोच के नए आयाम खोलती है, नई संभावनाओं के पंख जोड़ती है, तो यह परिवर्तन सार्थक है... एक प्रयास, उस सीपी की तरह जो एक रेतकण को अपने गर्भ में पालकर उसे एक विलक्षण मोती में बदल देती है... अन्यथा सागर तट पर उपेक्षित पड़ी एक खोखली सीप की तरह निष्प्राण और बेकार !

यह समूचा सामाजिक असंतुलन एक बड़ी चर्चा को जन्म देता है... या फिर यूँ कहें कि कई छोटी दिखने वाली विसंगतियाँ हैं जो एक बड़ी और गंभीर व्याधि की ओर इंगित करती हैं। पुरुषवाद द्वारा स्त्रियों का दमन उस ब्लड-कैंसर की तरह है जो एक भयंकर बीमारी तो है ही, पर साथ ही साथ अनेक छोटी-छोटी बीमारियों का कारण बन जाता है। और भारत में तो 'स्त्री विमर्श' अभी अपने बाल्यकाल में ही है... एक यात्रा का आरंभ... एक अनकहा कथ्य, जो अभी तक अपना अर्थ भी नहीं ढूँढ पाया है।

सदियों से दमित स्त्री की यह नई नवेली यात्रा आसान कैसे हो सकती है भला ? यह यात्रा समय और धैर्य की माँग करती है ! यह यात्रा वर्षों का अनुभव, उचित शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता माँगती है। आवश्यक है कि हर स्त्री अपने जीवन का अर्थ ढूँढे और अपनी दूसरी सहयात्रियों के साथ सामंजस्य बिठाए। मानो कई सह-नदियाँ आकर किसी महानद से मिलती जाएँ और वह उन्हें साथ लेकर महासागर की यात्रा को चल पड़े। अंततः ये सारी धाराएँ मिलकर एक हो जाएँ और स्त्री जीवन में घटने वाला यथार्थ बन जाएँ। पुरुष को यह समझना होगा कि आज की स्त्री न तो राजा रवि वर्मा की पेंटिंग की देवी है और न ही उसकी कैलेंडर कॉपी। वह तो रक्त-अस्थि-मज्जा से बनी वह मानवी है जो तोड़े जाने से टूटती है, बिखेरे जाने से बिखरती भी है लेकिन पुनः पुनः अपने बिखरे टुकड़ों को संजो कर अपने नई यात्रा पर निकल पड़ती है।

संशय नहीं कि इस कथा की हर पात्र वह स्त्री है जिसका कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार से दमन किया गया है... "वह" एक पाँच वर्ष की बच्ची है जिसकी कटोरी में चावल का पानी और उसके भाई की नियति दूध का कटोरा है। "वह" सत्रह-अट्ठारह साल की किशोरी भी है जिसका कॉलेज की पढ़ाई छुड़ाकर उसे ब्याह दिया जाता है... जिसके मायके व ससुराल तो होते हैं, पर घर नहीं होता । "वह" पच्चीस साल की एक वयस्क स्त्री भी है जो पाँचवी बेटी को जन्म देते ही प्रसूति कक्ष से बाहर घसीट लाई और पीटी जाती है क्योंकि उसकी कोख कलुषित है। "वह" पचास की वो प्रौढ़ा है जिसके बच्चे उसे बूढ़ी कहकर उसका मख़ौल उड़ाते हैं और वह इस 'श्वेत कक्ष मानसिक यातना' (white room soft torture) को सच मान उसे जीना सीख लेती है। "वह" अस्सी वर्षीया एक वृद्धा भी है जिसके हिस्से की पेंशन खाने वाले हर महीने उससे मिलने वृद्धाश्रम आते हैं और वह खिलकर गुलमोहर हो उठती है। यह पूरे का पूरा जेंडर डिस्कोर्स उन स्त्रियों की चर्चा है जो हमारे पुरुषवादी समाज द्वारा रचित भेद-विभेद के विशालकाय पर्वतों को सुई की नोक से कुरेद कर उसमें अपना "अस्तित्व" तलाशती हैं ! रहती तो हैं ये हमारे आस-पास ही पर उनकी एक अलग ही दुनिया है जहाँ कभी ये एक दूसरे को सशक्त बनाती हैं तो कभी अशक्त, पर लड़ती है उन प्रतिबंधों से जो समाज ने थोप रखे हैं उनके अंतस पर। ये साधारण स्त्रियाँ वे गीत हैं जिनके स्वर घुट गए हैं फिर भी वे छंद ढूँढ रही हैं। यह उन्हीं लड़ती, जूझती, हारती, जीतती, स्त्रियों की कथा है जो विमर्श नहीं बल्कि साँस लेना, खुलना और खिलना चाहती हैं। पश्चिमी फेमिनिज़्म की हवा उन्हें अब तक छू नहीं पाई है और उन्हें अपने अंतर्वस्त्र जलाने की नहीं बल्कि सिर पर आँचल संभालते हुए बिना डगमगाए चलने की चिंता है।

"वह" सर्वव्यापी है ! "वह" मैं भी हूँ और आप भी। हमारे आस-पास खिलती-मुरझाती हर स्त्री "वह" है ! वो कहते हैं, "एक स्त्री ही दूसरी स्त्री की शत्रु होती है"। "स्त्री" भले ही विमर्श का विषय हो न हो, पर यह कथन ज़रूर विमर्श का विषय है। यह कथन परिणाम है उस "सामाजिक अभियांत्रिकी" (Social Engineering) का जिसने अपने हितलाभ के लिए सदियों से स्त्रियों को एक पूर्व नियोजित साँचे में ढाल रखा है। द्रौपदी के सत को बाँटने वाली कुंती और सीता के दुखों का कारण चंद्रनखा (शूर्पणखा) ठहराई गई हैं। यह सामाजिक अभियांत्रिकी इतनी स्वच्छता और सक्षमता से काम करती है कि पुरुषवाद के हाथ और दामन दोनों ही गंदे न हों। स्त्रियाँ बड़ी ही सफ़ाई से 'शिकारी-शिकार संबंध' (Predator-Prey Relationship) में धकेल दी जाती हैं और उन्हें पता भी नहीं चलता।

होना तो ये चाहिए कि इस यात्रा में हर यात्री एक दूसरे के जीवन से अटूट होकर जुड़े। एक दूसरे से अपनी दृष्टि, अपने अनुभव, अपनी करुणा बाँटे। हम स्त्री होकर बढ़ें, स्त्री होकर लड़ें, स्त्री होकर जीतें। यदि हमें अपने स्त्रियोचित गुण छोड़कर, पुरुष की तरह बनकर पुरुषवाद से लड़ना पड़े तो हम क्या ही लड़े और क्या ही जीते ? यदि एक स्त्री "पुरुष-सी" हो गई तो उसकी बची खुची अस्मिता तो धूल में ही मिल गई। पुरुषों से सीखी क्रूरता, अहंकार और व्यसन हमें स्त्री नहीं रहने देंगे और हमारे सदियों के संघर्ष को नगण्य कर देंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुरुषों की भद्दी नक़ल उतारती आज की तथाकथित आधुनिक स्त्री का यह नया अवतार उसके वास्तविक अनुभवों की परिणति है। जो देखा, जाना, बूझा, झेला वो यथारूप जीवन में उतार लिया। इस आशा में कि शायद इसी रास्ते चलकर वे पुरुषों के मुक़ाबले खड़ी हो पाएँगी।

सदियों का अनुभव संप्रेषित है इसमें... तो स्वाभाविक है कि आधुनिक स्त्री का यह नया स्वरूप एक विशाल कैनवस पर खिंचे एक त्रिफलक चित्र (Triptych painting) सा है, लंबे समयांतराल में उकेरा गया, आवश्यकतानुसार खुलता और बंद होता ! नई स्त्री का यह विद्रोही स्वरूप उसकी अच्छी-बुरी अनुभूतियों की परिपक्व या अपरिपक्व अभिव्यक्ति हो सकता है। जब भी मैं किसी स्त्री को पुरुषों की नक़ल कर इतराते देखती हूँ तो मुझे कभी तो उसके भीतर का ख़ालीपन दिखता है, तो कभी वह स्प्रिंग जो ख़ूब ज़ोर से दबा रखने के बाद छूटते ही उछल पड़ता है। तो कभी लगता है कि "वह" समूचे स्त्रीत्व का भार अपने कन्धे पर उठाए अकेली ही हमारा युद्ध लड़ने निकल तो पड़ी है, लेकिन न तो उसे संवेदना मिल पा रही है, न ही विजय।

पर, आज की शिक्षित स्त्री मुक्त होने और उन्मुक्त होने के बीच का अंतर समझती है ! जानती है कि बँधन है, हद है, तभी बेहद हो जाने की उत्कंठा भी है ! मुक्ति की अकुलाहट है, पर अनुशासन और वर्जनाएँ भी हैं ! कारण स्पष्ट है। स्त्री मुक्त होना चाहती है... अपने ही नियमों और अवरोधों से, अपनी ही बेड़ियों और बँधनों से। पर उसे शक्ति का लास्य बहुत प्रिय है। ताल की थाप बिन वह चल नहीं सकती। यही कारण है कि मैं कहती हूँ कि स्वतंत्रता में 'स्व' का 'तंत्र' होना चाहिए। आत्मानुशासन ! नई स्त्री लय-ताल की पायल पहन कर चलती है। उम्मीद है कि आपको वह संगीत सुनाई दे रहा है जो कभी उन बेड़ियों की रुनझुन और उसके रुदन की जुगलबंदी से जन्मा था पर अब वह अनहद की ओर उठ रहा है ! इक्कीसवीं शताब्दी का चौथाई हिस्सा पार करने के बावजूद आज हम साल में एक दिन महिला दिवस मनाते और नवरात्रि के नौ दिन शक्ति पूजा करते हैं, फिर बाक़ी के दिनों में उन्हीं स्त्रियों के प्रति अमानवीय और असंवेदनशील हो जाते हैं, इससे बड़ी विसंगति और क्या होगी ? मुझे तो लगता है कि इस समय कोई भी स्त्री विमर्श बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं होना चाहिए। पर जाने क्या हुआ कि मेरी क़लम वक्र हो गई और यह सब लिख बैठी। मेरी महिला पाठकों को दुखेंगे ये शब्द... पर, पुरुष पाठकों से आग्रह है कि वे भी ये दुखते शब्द ज़रूर पढ़ें... बस इतना सा ही तो है यह विमर्श ! कोई स्त्री-पुरुष का संघर्ष नहीं, मात्र मानवता की बात है ! आपके हमराही के पाँव लहूलुहान हैं... बस !!

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ सभी स्त्रियों को और उन सभी पुरुषों को भी जो स्त्रियों का सम्मान करते हैं !!